खोज

यात्रा टाइपराइटर के आविष्कार की

मानव सभ्यता के विकास में लेखन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हाथ से लिखे दस्तावेज लंबे समय तक संचार और प्रशासन का आधार रहे, किंतु औद्योगिक क्रांति के दौर में जब व्यापार, न्यायालय और सरकारी कार्यों का विस्तार हुआ, तब तेज और स्पष्ट लेखन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इसी आवश्यकता ने टाइपराइटर के आविष्कार की दिशा में अनेक प्रयासों को जन्म दिया। 18 वीं शताब्दी में इंग्लैंड के हेनरी मिल ने एक "राइटिंग मशीन" का पेटेंट अवश्य कराया, पर उसका कोई ठोस मॉडल सामने नहीं आ पाया। 19 वीं शताब्दी में विभिन्न आविष्कारकों ने प्रयोग किए, परंतु मशीनें जटिल और अव्यावहारिक सिद्ध हुईं। अंततः इस दिशा में निर्णायक सफलता अमेरिकी आविष्कारक क्रिस्टोफर लाथम शोल्स को मिली। उन्होंने 1860 के दशक में अपने साथियों के साथ मिलकर एक ऐसी मशीन विकसित की, जो अक्षरों को यांत्रिक ढंग से कागज पर उकेर सकती थी।

शोल्स के इस आविष्कार को 1874 में व्यावसायिक रूप से उत्पादन का अवसर मिला, जब प्रसिद्ध कंपनी Remington & Sons ने इसे बाजार में उतारा। "Sholes and Glidden Typewriter" के नाम से प्रसिद्ध इस मशीन ने कार्यालयों की कार्यशैली बदल दी। इसी के साथ QWERTY की-बोर्ड लेआउट भी अस्तित्व में आया, जिसे टाइपबार के आपस में फंसने की समस्या से बचने के लिए तैयार किया गया था। यही लेआउट आज भी कंप्यूटर कीबोर्ड पर प्रचलित है।

टाइपराइटर ने न केवल प्रशासनिक कार्यों को गति दी, बल्कि समाज में नई भूमिकाएं भी निर्मित कीं। विशेष रूप से महिलाओं के लिए टाइपिस्ट के रूप में रोजगार के अवसर खुले। पत्रकारिता, न्यायालय और व्यावसायिक पत्राचार में यह मशीन क्रांतिकारी सिद्ध हुई। 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कंप्यूटर और प्रिंटर के आगमन से टाइपराइटर का उपयोग धीरे-धीरे कम हो गया, किंतु लेखन तकनीक के इतिहास में उसका योगदान अमिट है। यह आविष्कार मानव की उस जिज्ञासा और नवोन्मेष की भावना का प्रतीक है, जिसने साधारण लेखनी को यांत्रिक दक्षता में परिवर्तित कर दिया।

वैज्ञानिक के बारे में

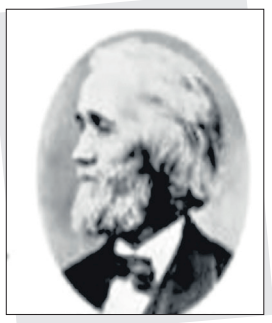

क्रिस्टोफर लाथम शोल्स का जन्म 14 फरवरी 1819 को अमेरिका में हुआ। वे पेशे से पत्रकार, संपादक और राजनीतिज्ञ भी थे। युवावस्था में उन्होंने प्रिंटिंग प्रेस और समाचार-पत्रों से जुड़कर काम किया, जिससे उन्हें लेखन और मुद्रण तकनीक में गहरी रुचि हुई। वे सामाजिक सुधारों के समर्थक थे और दास-प्रथा के विरोध में भी सक्रिय रहे। बाद में उन्होंने यांत्रिक प्रयोगों की ओर ध्यान दिया और टाइपराइटर के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शोल्स का निधन 17 फरवरी 1890 को हुआ, किंतु उनका आविष्कार आज भी आधुनिक कीबोर्ड के रूप में जीवित है।

भारत के खगोलविद् समझेंगे ब्रह्मांड की गुरुत्व लहरें

कॉम्पैक्ट बाइनरी कोलीसेंस ऑब्जर्व्ड बाय लीगो एंड विर्गो ड्यूरिंग द सेकेंड पार्ट ऑफ द थर्ड ऑब्जर्विंग रन शीर्षक से उपलब्ध एक रिसर्च-रिव्यु रिपोर्ट उस व्यापक परियोजना के बारे में बात करती है, जिससे रेडियो एस्ट्रोनॉमर्स ने सुदूर ब्रह्मांड में ग्रेविटेशनल वेव्स की उपस्थिति के स्रोतों को चिह्नित किया है। ग्रेविटेशनल वेव्स अर्थात गुरुत्व लहरों और इनमें समाई हुई विपुल शक्ति से ब्रह्मांड में नई रचनाओं का जन्म होता है और पुरानी रचनाओं एवं अरबों-खरबों गैलेक्सियों में मौजूद तारों या कहें तो ऑब्जरवेबल स्टार्स के जीवन मरण की घटनाओं के अलावा ब्लैक होल्स की मैपिंग करने के बाद एक कैटेलॉग बनाया गया है। कैटेलॉग, मतलब एक ऐसी बड़ी सूची वाली किताब, जिसमें यह दर्ज किया गया है कि फलां तारा या ब्लैक होल, पृथ्वी से किए गए अवलोकन की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखकर, ब्रह्मांड में किस तरफ और कितना दूर मौजूद हैं और क्या होने की संभावना है, जिसे एक विशिष्ट संख्या और नाम दिया गया है।

मनुष्य की वैज्ञानिक रुचियों का यह एक ऐसा अध्याय है, जिसकी कोई भी व्याख्या विस्मित करने के लिए काफी है। ब्रह्मांड अवलोकन के लिए जो भी साइंटिफिक इंस्ट्रूमेंट्स अब तक बनाए गए हैं या प्रतावित हैं, उन पर अनेक देशों ने सम्मिलित रूप से इतनी धनराशि खर्च कर दी है, जोकि हमारे अनुमान से आगे निकल जाती है। इन 200 सालों में अन्वेषण की उत्तेजना से ओतप्रोत खगोलविदों ने ब्रह्मांड के बारे में हमारी समझ को कई गुणा बढ़ाया है। एस्ट्रोफिजिक्स में ऐसे आख्यान सेट किये गए हैं, जोकि प्रथम दृष्टया समझ से बाहर हैं, क्योंकि एस्ट्रोनॉमी और एस्ट्रोफिजिक्स में नियम और गणनाएं और संबद्ध टर्मिनोलॉजी उपलब्ध हैं, उन्हें इस विधा के जानकारों के अलावा अन्य लोग कम ही समझते हैं।

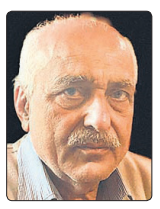

रणबीर सिंह
विज्ञान लेखक

उपर्युक्त शीर्षक के अंतर्गत 82 पन्नों में दुनिया के जाने-माने और कम ज्ञात उन 297 संस्थानों ने सहयोग करते हुए, जो लंबा-चौड़ा शोध-समीक्षा पत्र प्रकाशित किया है वह एक व्यापक और दीर्घकालिक सहयोग का नतीजा है। ग्रेविटेशनल वेव्स के सोर्सेज की मैपिंग क्यों जरूरी है और क्यों इस पर कभी भी राजनीतिज्ञों की टिप्पणियां आसानी से उपलब्ध नहीं होतीं? इसलिए कि ऐसे विषयों के बारे में संबद्ध विभाग और मंत्रालय से जुड़े हुए संस्थानों और फंडिंग एजेंसीज की टेक्निकल और साइंटिफिक एडवाइजरी कमेटियों या एक देश की संसद की स्थायी समिति में चर्चा होती है और इनकी रिपोर्टिंग कम ही होती है। उपर्युक्त स्टडी में कहा गया है कि इसमें ब्रह्मांड में ग्रेविटेशनल वेव स्रोतों की बहुतायत का खुलासा है, जोकि एडवांस्ड लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल वेव ऑब्ज़र्वेटरी लीगो और एडवांस्ड विर्गो डिटेक्टरों से किया गया तीसरी बार का कोलैबोरेशन सर्वेक्षण हैं। लीगो-विर्गो द्वारा किए गए सर्वेक्षण की तीसरी पारी के अंत तक खोजे गए ट्रांजिएंट ग्रेविटेशनल वेव सिग्नलों का ही यह रिकॉर्ड है, जोकि तीसरी पारी के दूसरे भाग में दर्ज किए गए सिग्नलों को शामिल करके पिछले सर्वेक्षण का नवीकरण करता है। नवीकरण अध्ययन में 1 नवंबर 2019 से 27 मार्च 2020 तक की अवधि में तीसरी पारी के दौरान का डेटा शामिल है।

ग्रेविटेशनल वेव्स एक एस्ट्रोनॉमिकल टूल है, जिसे इंस्ट्रूमेंट्स डिटेक्टर्स से पकड़ कर ब्रह्मांडीय रचनाओं की स्थिति, इनमें हुए परिवर्तन और व्यवहार पर नजर रखी जाती है और अवलोकन करते हुए डाटा दर्ज किया जाता है। यह भी कि इन व्यवहार परिवर्तनों और ग्रेविटेशनल वेव्स से पृथ्वी और सौर मंडल कैसे प्रभावित होता है। पृथ्वी पर जीवन की रक्षा के उपाय इन्हीं अवलोकनों की व्याख्या से मालूम होते हैं, जिसके लिए व्यापक डाटा का सुपर कंप्यूटर से एनालिसिस किया जाता है। इससे हमें मालूम होता रहता है कि सुदूर ब्रह्मांड से आने वाली ग्रेविटेशनल लहरों की शक्ति से पृथ्वी के मैग्नेटोस्फीयर पर क्या प्रभाव पड़ा है। अस्तित्व हेतु इसमें आने वाले सूक्ष्म परिवर्तन पृथ्वी के मौसम की विशाल मशीनरी को प्रभावित करते हैं, जिस पर जीवन टिका हुआ है।

लीगो वेधशालाओं की स्थापना

लीगो से पहले ब्रह्मांड के बारे में हमारे पास जो भी, जैसा भी डाटा था वह प्रकाश और इलेक्ट्रो मैग्नेटिक तरंगों को ऑप्टिकल एवं रेडियो टेलेस्कोप्स के प्रयोग से रिकॉर्ड किया जाता था। लीगो ऑब्जर्वेटरीज की स्थापना के बाद से एक अतिरिक्त और बेहतर टूल खगोल भौतिकिविदों को हासिल हुआ है। लीगो वेधशालाओं की स्थापना होने के बाद सन् 2002 में इन्होंने काम करना शुरू किया था। सन् 2015 में लीगो को उन्नत किया गया तभी बहुत सा नया डाटा मिला। ग्रेविटेशनल वेव्स की मौजूदगी की अवधारणा सबसे पहले अल्बर्ट आइंस्टीन ने स्पेशल थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी में प्रकट की थी। क्या ग्रेविटेशनल वेव्स वास्तव में उपस्थित हैं, यह मालूम करने के लिए सन् 1960 में अमेरिकी और सोवियत युग के वैज्ञानिकों ने चिंतन करते हुए इन्हें पकड़ने के लिए सैद्धांतिक कार्य शुरू किया और कहा कि ये मौजूद हैं और इनके दर्ज करना भी संभव है, बशर्ते विशिष्ट प्रकार के इंस्ट्रूमेंट्स का निर्माण कर लिया जाए।

इंटरफेरोमीटर का निर्माण

प्रोटोटाइप इंटरफेरोमेट्रिक ग्रेविटेशनल वेव डिटेक्टर इंटरफेरोमीटर, 1960 के दशक के आखिर में रॉबर्ट एल फॉरवर्ड और ह्यूजेस रिसर्च लेबोरेटरीज में उनके साथियों ने बनाए थे, जिनमें शीशे, फ्री स्विंगिंग के बजाय, वाइब्रेशन आइसोलेटेड प्लेट पर लगे थे। सन् 1970 के दशक में मैसाच्यूसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एमआईटी, कैलिफोर्निया, यूएस में वीस ने, जो इंस्ट्रूमेंट बना उसमें फ्री स्विंगिंग शीशे थे, जिनके बीच लाइट कई बार टकराती थी। बाद में जर्मनी में हैंज बिलिंग और उनके साथियों ने और फिर ग्लासगो, स्कॉटलैंड में रोनाल्ड ड्रेवर, जेम्स हॉफ और उनके साथियों ने भी अपने तरीके से ग्रेविटेशनल वेव्स को दर्ज करने के लिए यंत्र प्रणालियों का निर्माण किया था। काम जारी रहा और सन् 1980 में, यूएस नेशनल साइंस फाउंडेशन ने एमआईटी के पॉल लिंसय, पीटर सॉल्सन, रेनर वीस के नेतृत्व में एक बड़े इंटरफेरोमीटर के निर्माण और अध्ययन करने के लिए फंड दिया। फिर कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी कैलटेक के रोनाल्ड ड्रेवर और स्टैन व्हिटकॉम्बने 40 मीटर का एक प्रोटोटाइप बनाया, लेकिन दूसरी ओर एमआईटी ने पर्याप्त सेंसिटिविटी के साथ 1 किलोमीटर स्केल पर इंटरफेरोमीटर बनाने की संभावना साबित की, जिसमें बहुत से डिश-टाइप ऐंटेना जमीन पर लगाकर इन्हें आपस में जोड़ा जाना शामिल था।

रिसर्च और डेवलपमेंट

(एमआईटी) और कैलटेक के वैज्ञानिकों ने जब गुरुत्वाकर्षण तरंगों की खोज के महत्व को समझा, तब उन्होंने इस महत्वाकांक्षी परियोजना को आगे बढ़ाने के लिए साझेदारी की। ड्रेवर, किप थॉर्न और रोनाल्ड वीस के नेतृत्व में एक स्टीयरिंग कमेटी गठित की गई, जिसने 1986 तक परियोजना की दिशा तय की। बाद में अमेरिकी सरकार ने संरचना में बदलाव करते हुए कैलटेक के रोचस ई. वाउट को निदेशक नियुक्त किया। 1988 में प्रारंभिक चरण पूरा होने के बाद अनुसंधान एवं विकास के विस्तार हेतु नए प्रस्ताव को स्वीकृति मिली, किंतु 1989 से 1994 के बीच परियोजना तकनीकी और संगठनात्मक चुनौतियों से जूझती रही। नियमित फंडिंग के प्रस्ताव बार-बार अस्वीकृत होते रहे। अंततः 1991 में अमेरिकी कांग्रेस ने पहले वर्ष के लिए 23 मिलियन डॉलर की राशि स्वीकृत की। 1992 में परियोजना का पुनर्गठन किया गया और इसे एक उन्नत "इवोल्यूशनरी डिटेक्टर" के रूप में विकसित करने की योजना बनी, जो गुरुत्वाकर्षण तरंगों का सूक्ष्मतम स्तर पर पता लगा सके। 1994 में नेशनल साइंस फाउंडेशन ने 395 मिलियन डॉलर की ऐतिहासिक फंडिंग दी, जो उस समय की सबसे बड़ी वैज्ञानिक सहायता थी। उसी वर्ष वाशिंगटन के हैनफोर्ड और 1995 में लुइसियाना के लिविंगस्टन में निर्माण कार्य शुरू हुआ। 1997 तक निर्माण पूरा होने की दिशा में बढ़ते हुए दो संस्थाएं स्थापित की गईं—लीगो लेबोरेटरी और लीगो साइंटिफिक कोलैबोरेशन—जिनका उद्देश्य तकनीकी और वैज्ञानिक शोध को सुव्यवस्थित करना था।

भारत ने भी लीगो-इंडिया परियोजना के माध्यम से इस वैश्विक प्रयास में भागीदारी की। इसका लक्ष्य अमेरिका और इटली की प्रयोगशालाओं के सहयोग से भारत में एक अत्याधुनिक गुरुत्वाकर्षण तरंग वेधशाला स्थापित करना है। फरवरी 2016 में इसे सैद्धांतिक मंजूरी मिली और महाराष्ट्र में उपयुक्त स्थल का चयन हुआ। अप्रैल 2023 में भारत सरकार ने 2,600 करोड़ रुपये के बजट को स्वीकृति दी। परियोजना के 2030 तक पूर्ण होने की उम्मीद है। लीगो-इंडिया में चार किलोमीटर लंबे दो वैक्यूम चैंबर होंगे, जो अत्यधिक संवेदनशील उपकरणों से सुसज्जित रहेंगे। यह वेधशाला वैश्विक नेटवर्क का अहम हिस्सा बनेगी और गुरुत्वाकर्षण तरंग खगोल विज्ञान में भारत की भूमिका को सशक्त करेगी। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि गुरुत्व लहरों का अध्ययन ब्रह्मांड में पदार्थ की उत्पत्ति और विकास संबंधी हमारी समझ को नई दिशा देगा।

वाइल्ड लाइफ

साइगा मृग : अनोखे रूप वाला जीव

साइगा मृग, सामान्य मृग और चींटीखोर का अनोखा मिश्रण है। यह दुर्लभ प्रजाति मुख्यतः मध्य एशिया और दक्षिण-पूर्वी यूरोप के विस्तृत घास के मैदानों में पाई जाती है। साइगा मृग प्रायः 30 से 40 सदस्यों के झुंड में रहते हैं और तेज गति से लंबी दूरी तय करने के लिए जाने जाते हैं। दुर्भाग्यवश, अनियंत्रित शिकार और अवैध व्यापार के कारण इनकी आबादी पिछले कई दशकों से लगातार घटती जा रही है। स्थानीय समुदायों द्वारा इनके मांस का उपयोग भोजन के रूप में किया जाता है, जबकि नर साइगा के सींगों का इस्तेमाल पारंपरिक चीनी औषधि में होने के कारण इनका शिकार और भी बढ़ गया है। यही कारण है कि आज साइगा मृग दुनिया के सबसे संकटग्रस्त स्तनधारियों में गिने जाते हैं। साइगा मृग के शरीर पर दालचीनी रंग के घने और मुलायम बाल होते हैं, जो मौसम के अनुसार बदलते रहते हैं। इसकी सबसे विशिष्ट पहचान इसकी बड़ी, लचीली और नीचे की ओर झुकी हुई नाक है, जो पूरे चेहरे को ढकती हुई प्रतीत होती है। यह नाक केवल दिखावे के लिए नहीं, बल्कि एक अत्यंत उपयोगी जैविक संरचना है। गर्मियों में यह हवा में उड़ने वाली धूल और रेत को फेफड़ों में जाने से रोकती है, जबकि कठोर सर्दियों में अत्यधिक ठंडी हवा को फेफड़ों तक पहुंचने से पहले गर्म कर देती है। शिकार का सबसे गहरा असर इनके लैंगिक अनुपात पर पड़ा है। चूंकि केवल नर साइगा मृग के ही सींग होते हैं, इसलिए शिकारी मुख्य रूप से नर को ही निशाना बनाते हैं। परिणामस्वरूप, कई क्षेत्रों में मादा साइगा की संख्या असामान्य रूप से अधिक हो गई है, जिससे प्रजनन चक्र और पूरी आबादी का संतुलन बिगड़ रहा है। साइगा मृग न केवल जैव विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि घास के मैदानों के पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित रखने में भी अहम भूमिका निभाते हैं। इनका संरक्षण वास्तव में पूरे स्टेपी पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण से जुड़ा हुआ है।

वैज्ञानिक फैक्ट

भारहीन नहीं, फिर भी तैरते हैं बादल

बचपन में अक्सर हम यह सोचते हैं कि बादल रूई की तरह हल्के होते होंगे, इतने हल्के कि उन पर चला भी जा सके, लेकिन विज्ञान इस कल्पना को पूरी तरह बदल देता है। अमेरिकी भूवैज्ञानिक संस्था United States Geological Survey (USGS) के अनुसार, एक औसत क्यूमुलस बादल का वजन लगभग दस लाख पाउंड तक हो सकता है। यह वजन माल और यात्रियों से भरे एक विशाल बोइंग 747 विमान से भी अधिक है। सवाल यह है कि यदि बादल इतने भारी हैं, तो वे आकाश में तैरते कैसे रहते हैं? इस रहस्य की कुंजी है, घनत्व (Density)। किसी वस्तु का तैरना केवल उसके वजन पर निर्भर नहीं करता, बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि वह जिस माध्यम में है, उसके मुकाबले उसका घनत्व कितना है। बादल दरअसल हवा में तैरती अरबों सूक्ष्म जल-बूंदों और बर्फ के कणों से बने होते हैं। ये कण मिलकर भारी जरूर हो जाते हैं, लेकिन जिस हवा में वे मौजूद होते हैं, उसके मुकाबले उनका औसत घनत्व कम होता है।

बादलों के बनने की प्रक्रिया भी इसे समझने में मदद करती है। जब धरती की सतह से गर्म, नम हवा ऊपर उठती है, तो वह फैलती है और ठंडी होने लगती है। ठंडा होने पर उसमें मौजूद जलवाष्प संघनित होकर छोटी-छोटी बूंदों का रूप ले लेती है, यही बादल हैं। यह नम हवा आसपास की शुष्क हवा की तुलना में हल्की होती है, इसलिए ऊपर उठी रहती है। यही कारण है कि बादल आकाश में स्थिर या धीरे-धीरे बहते दिखाई देते हैं। इसके अलावा, हवा में लगातार चलने वाली ऊर्ध्वाधर धाराएं (Updrafts) भी बादलों को थामे रखती हैं। ये ऊपर की ओर उठती हवाएं जल-बूंदों को गिरने नहीं देतीं। जब बूंदें बहुत बड़ी और भारी हो जाती हैं, तब गुरुत्वाकर्षण हावी हो जाता है और वे वर्षा के रूप में धरती पर गिरती हैं। इस तरह, बादल न तो जादू से तैरते हैं और न ही वास्तव में भारहीन होते हैं। वे घनत्व, तापमान, नमी और वायु-गतिकी के संतुलन का सुंदर उदाहरण हैं। विज्ञान हमें सिखाता है कि जो दिखने में हल्का और सरल लगता है, उसके पीछे अक्सर अत्यंत गहरी और रोचक प्रक्रियाएं काम कर रही होती हैं।

दृष्टि से बुद्धि तक चश्मे का नया युग

कभी आंखें सिर्फ दृश्य पकड़ती थीं, अब वे डेटा, कमांड और सूचना की परतें पढ़ने लगी हैं। Smart Glasses इस बदलाव की मिसाल हैं। यह सिर्फ चश्मे नहीं, आंखों के सामने रखे मिनी-कंप्यूटर हैं- कैमरा, माइक, स्पीकर और कृत्रिम बुद्धिमत्ता से लैस, लेकिन यह कहानी केवल आज की नहीं है, इसकी शुरुआत उस दौर से हुई थी, जब इंसान ने पहली बार दुनिया को साफ देखने का सपना देखा। तेरहवीं सदी के इटली में जब शिल्पकारों ने दो छोटे लेंसों को धातु के घेरे में जड़ा, तब वह करुणा और विज्ञान का संगम था। इंसान अब किताब को बिना धुंध के पढ़ सकता था, स्पष्ट देख सकता था। यह केवल दृष्टि का आविष्कार नहीं था, बल्कि सभ्यता का आत्मविस्तार था। धीरे-धीरे वही साधारण यंत्र पहचान और फैशन का प्रतीक बना। बीसवीं सदी में प्लास्टिक लेंस, हल्के फ्रेम और पोलराइज्ड तकनीक ने इसे हर वर्ग का साथी बना दिया। फिर तकनीक ने इस 'दृष्टि' में 'बुद्धि' जोड़नी शुरू की।

स्टाइल, सुविधा और स्मार्टनेस का संगम- 2013 में गूगल ने Google Glass पेश किया। दुनिया का पहला बड़ा wearable computer, जो आंखों के जरिए सूचना दिखाता था। यह प्रयोग अपने समय से आगे था, लेकिन समाज तैयार नहीं था। निजता, सुरक्षा और असहजता के प्रश्नों ने इसे रोक दिया। यह असफलता नहीं, चेतावनी थी कि तकनीक जितनी मनुष्य के करीब आती है, उतनी ही जिम्मेदारी भी मांगती है। इसके बाद 2016 में Snapchat Spectacles आए। लक्ष्य था, जीवन के पलों को बिना हाथों के रिकॉर्ड करना। तकनीक हल्की थी, पर सोच अब भी कैमरे के इर्द-गिर्द घूम रही थी। कुछ वर्ष बाद Amazon Echo Frames (2019-2020) ने बिना स्क्रीन के केवल आवाज से संवाद की क्षमता दी। Alexa की आवाज सीधे कान तक पहुंचने लगी। अब Meta ने Ray-Ban के साथ मिलकर इन सब प्रयोगों को परिपक्व रूप दिया है। ऐसा उपकरण जो स्टाइल, सुविधा और स्मार्टनेस तीनों को साथ लेकर चलता है।

डॉ. शिवम भारद्वाज
असिस्टेंट प्रोफेसर, मथुरा

नवाचार की प्रयोगशाला बन सकता है भारत- अब इस दौड़ में भारत भी उतर चुका है। Lenskart ने फरवरी 2025 में Phonic Smart Glass लॉन्च किया। बेसिक ऑडियो सुविधाओं के साथ। अब मीडिया रिपोर्टों की मानें तो मार्च 2026 में वह B by Lenskart नाम से अपने एआई-संचालित ग्लास उतारने की तैयारी में है, जिसमें Gemini 2.5 AI, रीयल-टाइम अनुवाद, UPI भुगतान और स्वास्थ्य मॉनिटरिंग जैसी सुविधाएं होंगी। यह कदम भारत को केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि तकनीक निर्माता की भूमिका में रखता है। कुछ समय पहले ही Meta ने भारत में Ray-Ban Meta Smart Glasses लॉन्च किए, जो Meta AI Integration और real-time translation जैसी क्षमताओं से लैस हैं। भारत, जो पहले से ही दुनिया के सबसे बड़े wearable markets में से एक है, अब इस नवाचार की प्रयोगशाला भी बन सकता है।

कानून को भी होना होगा चौकन्ना

तकनीक की गंभीरता जुलाई 2025 में Meta के उस कदम से भी समझी जा सकती है, जब उसने Essilor Luxottica में 3.5 बिलियन रुपये की लागत से 3 प्रतिशत हिस्सेदारी खरीदी। सितंबर 2025 में कंपनी ने Ray-Ban Display Glasses की घोषणा की, जिनमें AR Display और Neural Wristband जैसी अत्याधुनिक तकनीकें हैं। यह स्मार्ट ग्लास विकास की एक निर्णायक छलांग है। यह तेजी जितनी रोमांचक है, उतनी ही सावधानी भी मांगती है। सबसे बड़ी चुनौती है, निजता की रक्षा। जब हर चश्मे में कैमरा और माइक्रोफोन होंगे, तब यह तय करना कठिन होगा कि कौन-सा पल सार्वजनिक है और कौन-सा निजी। यूरोप और अमेरिका में इस पर पहले ही कानूनी बहस शुरू हो चुकी है। भारत में भी डेटा संरक्षण कानून को अब इन नए उपकरणों तक विस्तार देना होगा। तकनीक जब आंखों पर चढ़ती है, तो कानून को भी उतना ही चौकन्ना होना पड़ता है।

दृष्टिहीनों के लिए बन सकता आंख

दूसरा प्रश्न सामाजिक व्यवहार का है। स्मार्टफोन ने हमें 'देखते हुए अनुपस्थित' बना दिया, लोग साथ होते हुए भी स्क्रीन में गुम रहते हैं। अब जब सूचना की परत आंखों के सामने ही होगी, तो हमारी नजर में कितनी मानवीयता बचेगी? क्या हम दृश्य देखेंगे या उसका विश्लेषण? क्या हम सामने वाले व्यक्ति को देखेंगे या उसके बारे में डेटा? यह प्रश्न केवल तकनीकी नहीं, बल्कि मानवीय भी है। फिर भी, इस तकनीक के लाभ गहरे और वास्तविक हैं। दृष्टिहीनों के लिए यह उपकरण आंख बन सकता है, जो सामने के दृश्य को आवाज में बदल दे। डॉक्टर सर्जरी के दौरान रीयल-टाइम डेटा देख सकेंगे, इंजीनियर और पायलट अपने सामने निर्देश पा सकेंगे, शिक्षक प्रयोगशाला में छात्रों को वर्चुअल डेमो दिखा सकेंगे। यह परिवर्तन सुविधा का नहीं, कार्य-संस्कृति का विकास है।

बाजार इस भविष्य को पहचान चुका है। रिपोर्ट्स के अनुसार 2024 में Smart Glasses Market लगभग $1.9 बिलियन का था और 2030 तक इसके चार गुना होने का अनुमान है। Essilor Luxottica ने 2025 की तीसरी तिमाही में वियरेबल्स में "exponential growth" दर्ज की है। Meta-Ray-Ban ने अपने पहले ही वर्ष में 10 लाख से अधिक यूनिट्स बेचे हैं। Xiaomi और Bose जैसी कंपनियां भी इस क्षेत्र में निवेश बढ़ा रही हैं। यह केवल प्रयोग नहीं, बल्कि नया उपभोक्ता-अर्थशास्त्र बन चुका है। भारत के लिए यह दोहरी भूमिका का समय है, निर्माण और नियमन दोनों में अग्रणी बनने का। यदि देश Made-in-India Smart Glasses को वैश्विक मंच पर उतारता है और साथ ही नागरिकों की निजता के लिए स्पष्ट नियम बनाता है, तो यह न केवल प्रौद्योगिकी, बल्कि नीति-निर्माण में भी नेतृत्व का उदाहरण होगा। अंत में, वही पुराना मगर जरूरी प्रश्न, क्या इंसान इस सुविधा के साथ अपनी संवेदना भी बचा पाएगा? बिजली ने रोशनी दी, पर नींद छीनी, इंटरनेट ने संवाद बढ़ाया, पर मौन कम कर दिया। अब स्मार्ट ग्लासेस हमारे सामने वही परीक्षा रख रहे हैं। वे हमें देखने में मदद करेंगे, पर यह हम पर है कि हम क्या देखना चाहते हैं। दृश्य या उसकी व्याख्या। भविष्य अब सचमुच आंखों के सामने है। तकनीक ने दृष्टि को बुद्धि में बदला है, पर बुद्धि तभी सार्थक है, जब उसमें विवेक जुड़ा हो। स्मार्ट ग्लासेस केवल अगली तकनीकी छलांग नहीं, बल्कि मानव दृष्टिकोण का विस्तार हैं। यह उस यात्रा का नया अध्याय है, जो तेरहवीं सदी के कांच से शुरू होकर इक्कीसवीं सदी की कृत्रिम बुद्धिमत्ता तक पहुंची है। चश्मे स्मार्ट हो गए हैं, अब जरूरत है कि देखने वाले भी उतने ही समझदार हों।